कोपलें

रजनी गुप्त

कहानी

कोपलें

रजनी गुप्त

जाड़े के सिकुड़े सिकुड़े से उदास कर देने वाले छोटे छोटे दिन। मद्धिम आंच में जलते चूल्हे की रंगत वाले सूरज ने आसपास की दीवारों पर धूसर रंग का लेप लगाते हुए नीचे उतरने की जुगत बिठाई। पीली मिट्टीनुमा रंग में रंगे उतरते सूरज को देख ऐसा लगा मानो उसने अपने सखा ठंड को आजादी से पसरने की पूरी छूट दे रखी हो। कड़कड़ाती ठंड से बचने सभी अपने घर दुआर के दरवाजे जल्दी से बंद करके भीतर दुबक जाते। अर्पिता के जीवन के ये सबसे मटमैले दिन थे। सब तरफ धुंध ही धुंध पसरी रहती। ऐसे में अक्सर दिन रात का हिसाब गड़बड़ा जाता और तिथियों की याद उनकी चेतना से गुम हो जाती। सुबह से कब दुपहर ढल जाती और दुपहर कब चुपके से संध्या का रूप धर लेती , पता ही नही चलता। देखते देखते जल्दी ही अंधेरे की सत्ता कायम हो जाती। अनमनी लेटी अर्पिता के मन पर पहले से ज्यादा सुस्ती और उदासी की परतें चढने लगतीं। इसी तरह तो उनके जीवन की संध्याबेला कब और कैसे आ धमकी , इसका तो उन्हें अहसास ही कहां हो पाया ? वे अपनी सोच की खोह में अभी गहरे धंसने ही वाली थी कि उनके कानों में बेटी की आवाज पड़ी –

' आप अभी से इतने थकी थकी सी क्यों लगने लगीं ममा ? आप पहले तो ऐसी बिल्कुल नही थीं , तब आप दफ्तर से लौटकर कितना खुश खुश रहती थीं , याद है ? बात बात पर हंसने और ठहाके लगाने वाली मस्तमौला सी मेरी ममा के साथ अब आखिर ऐसा हो क्या गया जो इतना मुरझाया और पीला पड़ा है आपका ये चेहरा , बिल्कुल निचुड़े हुए नीबू जैसा। ऊर्जा और उत्साह से भरी माई डियर ममा , आपको आखिर ऐसा हुआ क्या ? जबकि मैं तो यहां रिलैक्स करने आयी थीं , मगर यहां का तो माहौल ही इतना दमघोंटू और मनहूस लग रहा है.... इतना फ्रस्ट्रेशन, भला क्यों ? ' उसकी चहकती आवाज में सहस्र जलधारा से निकले असंख्य फौव्वारों जैसा जोश और उजास शुमार थी।

' तुम ठीक कह रही हो ईशा , मगर ये क्यों भूल जाती हो , तब हमारे पास नौकरी थी यानी ऊर्जा से लबालब भरी उम्र भी तब वैसी ही थीं न। रिटायरमेंट के बाद थोड़ा बहुत ठहराव तो आ ही जाता है न , नही ? ' अर्पिता ने ठहरे समय की तरह शांत लहजे में रूखा सा जबाव दिया।

' न , बिल्कुल नही ममा। यू आर रांग। मेरा दोस्त निखिल है न , उसके पेरेंट्स के रिटायर होने के बाद भी वे लोग आप जैसी बोरिंग लाइफ नही जीते। वे सब तो खूब घूमते फिरते हैं , लाइफ इंजॉय करते हैं। क्या हुआ ममा , आप लोग तो यहीं एक जगह रहते रहते कितनी सड़ी , उबाऊ और नीरस जिंदगी जी रहे हैं , क्या हुआ ममा ? पापा की तरह इतनी चुप कब से रहने लगी ? कुछ बोलती क्यों नही ? बोलो न ? ' बोलते बोलते वह उन्हें झकझोरने लगी लेकिन उसका ध्यान कही और था। घंटों नेट पर चिपकी आंखों के जरिए दिमाग में दौड़ती भागती जिंदगी के बनते बिगड़ते अक्स जो लैपटॉप पर चलती फिरती उंगलियों के जरिए पल भर के लिए जिंदा इंसान रूप में साकार हो उठते। उसकी व्यस्तता को देख बगल में बैठी मां ने उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरना चाहा तो उसने हाथ झटक चिड़चिड़ाते हुए लैपटाप में पूर्ववत देखते हुए जुबानी पलटवार किया– ' क्या है ममा ? ऐसे क्या देख रही हो ? जासूसी कर रही हो पापा की तरह ? ' बेलिहाज तरीके से मां पर इल्जाम मढने में उसने पलभर की देरी नही की। तिक्त बोल सुनकर झुंझला उठीं वे। ऐसा लगा जैसे किसी ने पूरी ताकत से उनके गाल पर घूंसा जड़ दिया हो। मुंह तक भर आए जबाव को हलक से नीचे उतारते हुए वे निःशब्द कमरे से बाहर निकल आईं। क्या फायदा जबाव देने से ? एक बात के उल्टे सौ इल्जाम जड़ देगी और चंद दिन बाद चल देगी अपने रस्ते। सो चुप रहने में ही समझदारी है। क्या फायदा बहस करके खामहखां माथा गर्म करने से ? वो लाख तर्क देकर समझाती रहें मगर उसे तो वो मानने से रही। दूसरे कमरे में बिस्तर पर लेटे लेटे अर्पिता को कैसे भी नींद नही आ रही थीं। ये , ये वही ईशा है जिसके जीवन को संवारने की खातिर उन्होंने अपने महत्वपूर्ण रूतबे वाली नौकरी से कई कई महीनों तक छुट्टियों की अर्जियां भेजकर रात रात भर चाय कॉफी बना बनाकर कायदे से पढ़ाया लिखाया। न जाने कहां कहां पर भटकते भटकते नई से नई किताबों की खोज करती फिरी। न जाने कितनी कितनी जगहों पर कोचिंग के लिए दिन रात एक कर दिया। रह रहकर एक एक घटनाएं मूर्त रूप लेकर जिंदा होने लगी। उसका वह भोलापन , मासूमियत और बात बात पर खिल खिलाती निश्छल बच्चे जैसी हंसी .....धीरे धीरे.सब कुछ तेजी से बदल गया है। अपनी बनायी मूर्तियों मे जब प्राणप्रतिष्ठा हो जाए , उसके बाद अगर वह भरभराकर खंडहर मे तब्दील होने लगें तो , कितना कष्टकारी होता है वो अहसास ? अभी कल की बात है , जब उसकी दोस्त रागिनी अपने बेटे

अमोल के बारे में बताते बताते रो पड़ी थीं–' मेरा तो एक ही बेटा है लेकिन जब से घर छोड़कर हॉस्टल गया है , पलटकर कभी फोन नही करता। हमीं चाहे जितनी बार करते रहें मगर वो कभी नाम तक नही लेता हमारा। ये बच्चे बाहर जाकर इतने केयरलैस कैसे हो जाते हैं ? यू नो , मैंने तो इसी की खातिर अपनी नौकरी से वीआरएस ले लिया था मगर अब ये खालीपन , अकेले पड़ते जाने का अहसास और हरदम खुद के फालतू होते चले जाने का व्यर्थताबोध काटने दौड़ता है। करें तो क्या करें ? आखिर कहां चले जाएं ? कैसे वक्त काटें ? '

' देखो , रिश्तों में जीने का मतलब ही है विद्युत प्रवाह वाले तारों पर चलना। दौड़ते करंट वाले उस तार पर पैर रखकर चलना जहां मजबूरी बन जाए , वहां झटके तो लगने तय है। झटके खाकर धम से गिरोगी भी और गिरकर खड़ा भी होना पड़ेगा। ' अर्पिता ने उन्हें या शायद खुद को समझाना चाहा।

' सो तो है , हमें अपनी इन अपेक्षाओं के झटके बर्दाश्त करने की आदत डाल लेनी चाहिए वरना तकलीफ हमीं उठाते हैं , वे तो अपनी नई दुनियां में मस्त भी हैं और व्यस्त भी। देखो , जब उन्हें उड़ान भरने के लिए खुला आसमान मिला है सो वे जल्दी जल्दी जमीन छोड़ने की हड़बड़ी में लगे रहते। ऐसे में भला वे क्यूंकर सोचेंगे पीछे छूटे हम लोगों के बारे में ? दरअसल नए क्षितिज को छूने की लालसा होती ही इतनी बलवती है कि ऐसे में फिर कुछ और कहां सूझता होगा उन्हें ? ' उन्होंने दबी जुबान से कुछ नया जोडना चाहा।

' एक और बात , अब उन्हें हमारी कतई जरूरत नही। न तो हम उनकी सोच के केंद्र में हैं और न ही उस घेरे के बाहर कहीं हाशिए पर हैं , मगर ऐसी इसमें बिसूरने की भी कोई जरूरत नही। इस सचाई को जान लो और स्वीकार लो इस हकीकत को कि वे अपने संगी साथियों संग मस्ती भरा जीवन जी रहे होते हैं। आवेग भरे स्वप्निल संसार में जीने की ये उम्र ही ऐसी होती है , देर सवेर उन्हें वहीं का जीवन रास आने लगता है। कभी कभी ऐसा भी तो होता है कि हम यहां जिस कोण से खड़े होकर रिश्तों को देख परख रहे होते , वहां से वे चीजें धुंधली दिखती है मगर जब हम उसी तस्वीर को दूसरे कोण से देखने लगते है वहां तुम्हारी देखी तस्वीर तो कहीं सामने होती ही नही। यानी उनके लिए हमारी भावुकता तो निहायत बचकानी , उबाऊ या बोझिल लगती होगी। ' किसी कुशल प्रवक्ता की तरह उसने लंबा लेक्चर दे डाला।

' मतलब ? हम उनके घेरे के अंदर बाहर कहीं भी नही रहे ? चलो इसे भी मान लिया तो फिर हम आखिर हैं कहां ? मुझे तो अक्सर ऐसा लगता जैसे जब तक उन्हें पैसों की जरूरत रहेगी , वे गाहे व गाहे हमें फिर भी याद कर लेंगे मगर उसके बाद ? ' बेचैन कर देने वाले बोल लगे उनके।

' सुनो , इतना सेंटी होकर सोचने की जरूरत नही। देरसवेर वे भी तो तुम्हारी तरह संवेदना के भंवर में डुबकी लगाएंगे ही , तब उन्हें फिर से तुम्हारे सपोर्ट की जरूरत पड़ेगी। कभी कभार जीवन की पगडंडियां इतनी तेज फिसलन भरी मिलती हैं तब उनके रपटने का डर रहेगा और तब फिर तुम्हारा हाथ थामने जरूर आएंगे वे। खैर इसे छोड़ो , चलो जरा अपने उस दौर को भी तो याद कर लो.....' उस जीवन के कितने सारे पन्ने तो हॉस्टल में रहते हुए हर रोज दिमाग में लिखे मिटाए जाते थे। सोचने बैठी तो अतीत के कई बंद दरवाजे एक साथ खुलते चले गए।

अपने समय की मेधावी छात्रा अर्पिता पहली बार अपने शहर छोड़ इलाहाबाद यूनिवर्सिटी आई थीं एमएस.सी करने। शुरूआत के कुछ महीने जरूर घर की याद आती रहीं मगर साल भर के अंदर ही वह वहीं के माहौल में ऐसे रच बस गई कि शुरूआती साल में दो तीन बार और फिर तो साल में बस एकाध बार ही घर आने का मन करता। पूरे समय हॉस्टल की लड़कियों संग आजादी से घूमने फिरने , पढ़ने और उसके बाद कंपटीशंस की तैयारियां। क्या तो दिन थे वे जब तन मन में मनों टन उत्साह ठूंस ठूंसकर भरा रहता था। ऐसे में कहां सुधि रहती थी किसी की ? तब तो कॉलेज का हर रंग नया और हर क्षण एक नया अनुभव। हरेक लमहा यादगार बनता जा रहा था। लेक्चर हॉल में टीचर्स के साथ बेहतर तालमेल बिठाते हुए पढ़ना और उसके बाद खुद को किसी उच्च पद पर देखना शुरू कर दिया था। अपने स्वप्निल महत्वाकांक्षी खयालों में हम न जाने क्या क्या बनते रहते। कभी कभी खयालों की रूपहली दुनियां में खलल हो जाया करता , जब एक सवाल सांप बनकर अक्सर डराया करता , अगर हम कामयाब न हुए तो ? उसे याद आया जब वह हॉस्टल से घर लौटती , मां उसकी पसंदीदा चीजें बनाकर रखती जबकि उसे उनका बनाया खाना ज्यादा नही रूचता। उनके बार बार याद दिलाने पर – अरे ! तुझे तो ये आंवले की सब्जी